International Journal of Research
Special Issue for UGC Approved Journal-Hindi Papers
Available at https://edupediapublications.org/journals
e-ISSN: 2348-6848
p-ISSN: 2348-795X
Volume 05 Issue 02
January 2018

पाणिनी व्याकरण के अनुसार समास का उद्भव और विकास

पूनम रानी
असिस्टेंट प्रोफेसर
सिंह राम मैमोरियल कॉलेज
उमरा, हांसी, हिसार

भूमिका :

संसार में मनुष्यों की क्रिया प्रतिक्रिया सभी भाषा के आधार पर ही चलती है। महाकवि 'दण्डी' ने 'काव्यादर्श' में कहा है कि ''यह सम्पूर्ण भुवन अन्धकार पूर्ण हो जाता, यदि संसार में शब्द–स्वरूप ज्योति (भाषा) का विकास न होता।[1] भाषा का शुद्ध ज्ञान व्याकरण द्वारा होता है। भाषागत अभिव्यक्ति का सबसे महत्वपूर्ण उपादान 'वाक्य' ही है। हम अपने विचारों को वाक्यों द्वारा ही अभिव्यक्त कर सकते हैं, अलग–अलग शब्दों द्वारा नहीं। भाषा की प्रारम्भिक दशा में वाक्यों का ही प्रयोग होता था, अर्थात् भाषा का मूल स्वरूप वाक्य ही था। तैत्तिरीय संहिता में स्पष्टरूप से दिखाई देता है कि प्रारम्भ में वाक्य एक अविभाज्य विचार की ईकाई में माना गया।[2] वाक्य के पदों का विश्लेषण बाद में विचार करने वाले वैयाकरणों द्वारा किया गया, इस प्रकार भाषा का अवयव पद को न मानकर वाक्य को माना। शब्द और ध्वनि जो वाक्य की संरचना करते हैं, वे केवल वास्तविकता को ही प्रकट करते है।। भर्तृहरि का कथन है कि शब्दों में ध्वनियाँ नहीं हैं, वाक्य में शब्द नहीं हैं, और वाक्य के बिना शब्दों में स्वतंत्र सत्ता नहीं है।[3] वक्ता अपने अभिप्रायः को पृथक–पृथक पदों मे न बोलकर एक वाक्य के रूप में ही प्रकट करता है। संस्कृत भाषा में 'समासों' का आधार 'वाक्य' ही है। समास वाक्य रचना का अनिवार्य अंग है।

कई भाषा विज्ञानी समास को पदविज्ञान व वाक्य विज्ञान का संधि–स्थल मानते हैं।[4] अनेक पदों का परस्पर संबंध बताने के कारण यह वाक्य विज्ञान का विषय है, तथा समस्त होने पर यह एक पद बन जाता है, अतः पद विज्ञान का विषय है। मुख्य रूप से समासों को वाक्य रचना से सम्बन्धित माना गया है।

International Journal of Research
Special Issue for UGC Approved Journal-Hindi Papers
Available at https://edupediapublications.org/journals
e-ISSN: 2348-6848
p-ISSN: 2348-795X
Volume 05 Issue 02
January 2018

पाणिनी ने अपने ग्रंथ 'अष्टाध्यायी' के द्वितीय अध्याय में समासों का वर्णन किया है। समास का अर्थ है—पृथक—पृथक वर्तमान खण्डों को एक जगह संक्षेप में रखना, तथा व्यास का अर्थ विस्तार से करना है। व्यास का विपरितार्थक अर्थ ही समास है। वेदों में जो प्रतिपाद्य अर्थ सूक्ष्म तथा समास शैली में थे, उनका विस्तृत व्यास शैली में प्रतिपादन करने से ही उन्हें 'व्यास नाम दिया गया। समास को वृत्तियों के अन्तर्गत लिया गया है। वृत्ति शब्द क्लिष्ट शब्द—रचना के अर्थ को प्रकट करता है, जिसकी व्याख्या की आवश्यकता होती है, वृत्ति का अर्थ है—दूसरे पदार्थ के अर्थ को भी कहना। समास होने पर पहले पद की विभक्ति का लोप हो जाता है, तथा कुछ पदों में इतना अधिक निकट का संबंध होता है कि वह एक दूसरे के साथ संश्लिष्ट हो जाते हैं, और वे पद सामर्थ्य संबंध द्वारा एकीकृत होकर एकार्थ समस्त वृत्ति का रूप धारण कर लेते हैं, अर्थात् आपस में मिलकर एक पद बन जाता है। पाणिनी ने मुख्य रूप से पद के दो भाग माने हैं— सुबन्त और तिङ्न्त।[5] लोक में सुबन्त की ही सुबन्त के साथ समास होता है।

समास प्रकरण के प्रारम्भ में ही पाणिनी ने 'समर्थः पदविधिः'[6] यह सूत्र दिया है, इसके अनुसार परस्पर संबंध पदों का ही समास होगा, या आकांक्षा होगी। समास संज्ञा होने पर दोनों समुदायों की एक प्रतिपादिक संज्ञा हो जाती है।

समासों का मुख्य रूप से चार भागों में बाँटा गया है—अव्ययीभाव, तत्पुरूष, द्वन्द्व और बहुब्रीही। जिनका विस्तृत वर्णन इस प्रकार है।

समास का अर्थ—

समास शब्द का मूल अर्थ संक्षेप है। समास शब्द सम् उपसर्ग पूर्वक अस् रखना धातु से धञ् प्रत्यय लगकर बना है।[7] धञ् प्रत्यय कभी क्रिया (भाव) अर्थ में आता है। जब प्रत्यय भाव अर्थ में आता है, तो शब्द का अर्थ होता है—सम् असनम् Pitting together ,लौकिक रूप में आपस में मिले हुए शब्द, तथा जब धञ् प्रत्यय कर्म को व्यक्त करने के लिए किया जाता है, तो समास का अर्थ होता है, जो एक—दूसरे के साथ मिला हुआ हो। समास के लिए कम से

International Journal of Research
Special Issue for UGC Approved Journal-Hindi Papers
Available at https://edupediapublications.org/journals
e-ISSN: 2348-6848
p-ISSN: 2348-795X
Volume 05 Issue 02
January 2018

कम एक दो शब्दों का होना जरूरी है। M. Srimanna Ramayana hurti ने समास की परिभाषा इस प्रकार से की है

''समास दो या दो से अधिक स्वतंत्र पदों को आपस में मिलाने का परिभाषिक नाम है।[8] समास होने पर सबसे पहले पद की विभक्ति का लोप हो जाता है। क्योंकि समास के घटक पदों को मिलाने पर उनकी प्रातिपादिक संज्ञा हो जाती है। विभक्ति का लोप होने पर उनके आकार में कमी आ जाती है, परन्तु अर्थ वही रहता है।[9] अनेक पदों का एक पद हो जाने से प्रधान स्वर उदात्त सामान्यतः एक ही पद पर होता है, पद में यद्यपि सुप् और तिड्. दोनों विभक्तियाँ रहती हैं।[10] परन्तु समास सुबन्त का सुबन्त के साथ ही होता है, परन्तु वेद में कहीं–कहीं तिड्.न्त के साथ भी समास होता है। पद सुबन्त को उद्देश्य मानकर होने के कारण समास आदि विधियाँ भी पदाविधियों के अन्तर्गत ही आती हैं।

समास केवल उन्हीं शब्दों का होता है, जो समर्थ हो, ''अर्थात् दूसरे शब्द के साथ संबंध होकर अर्थ देने में सक्षम हों, बिना अर्थ वाले और असंबंध पदों का प्रयोग पदाविधि के अन्तर्गत नहीं आता, अर्थात् उनका समास नहीं होता।

उदाहरणार्थ यथा –

''राज्ञः पुरूषः=राजपुरूषः (राजा का पुरूष) यहां पर राजा का पुरूष है, और पुरूष राजा का है, अतः स्वस्वामि–भाव संबंध होने से राज्ञः[11] और पुरूष परस्पर संबंध अर्थात् समर्थ हैं, अतः यहां समास हो गया परन्तु ''भार्या राज्ञः, पुरूषों देवदत्तस्य'' (राजा की भार्या, पुरूष देवदत्त का) यहां पर राजा का संबंध देवदत्त के साथ है। यहां पर परस्पर राजा और पुरूष की आपस में समर्थता नहीं है, अतः ''राज्ञः पुरूषः'' में समास नहीं हुआ। यहां पर ध्यान देने योग्य बात यह है कि ''समर्थः पदविधिः''[12] सूत्र अष्टाध्यायी में वर्णित पदविधियों में समान रूपसे लागू होता है। जहां कहीं भी पदो ंके आपस में संबंध की चर्चा हो, वे चाहे वाक्य में विभक्त्यन्त पद हो, अथवा घनिष्ठ संबंध के कारण एक होकर अपने संबंध को प्रकट करें, वे एकार्थवृत्ति हैं। कृत्, तद्धित, समास, एकशेष तथा सनाद्यन्त आदि वृत्तियाँ समर्थः पदविधि'' के अन्तर्गत ही आती हैं। उपर्युक्त वृत्तियाँ एकार्भीभाव रूप सामर्थ्य के रहने पर ही सार्थक होती हैं। अर्थात्

International Journal of Research
Special Issue for UGC Approved Journal-Hindi Papers
Available at https://edupediapublications.org/journals
e-ISSN: 2348-6848
p-ISSN: 2348-795X
Volume 05 Issue 02
January 2018

इनमें प्रत्येक की अपने समुदाय में ही अर्थ बतलाने की शक्ति मानी जाती हैं। इसी शक्ति को ''सामर्थ्य'' कहा गया है। सामर्थ्य दो प्रकार का होता है–

1. एकार्भीभाव सामर्थ्य
2. व्यपेक्षाभाव सामर्थ्य

अलग–अलग अर्थ वाले पदों में समुदाय की शक्ति से एक अर्थ की उपस्थिति को विशेष्य–विशेषण भाव के रूपमें मिले–जुले अर्थ को बतलाने वाली शक्ति का नाम एकार्थी भाव है। कैय्यट ने इसकी परिभाषा इस प्रकार की है– ''प्रधान अर्थ के लिए पद अपने अर्थ को गौण बनाने या छोड़ दे, या किसी दूसरे की अभिव्यक्ति करे, वहां पर एकार्थीभाव सामर्थ्य होता है।'' जैसे पानी में नमक मिलने पर दोनों एकाकार हो जाते है, तथा पुरूष शब्द के अर्थ को प्रकट करता है, किन्तु वृत्ति (समास) में पदों के एकार्थक होने के कारण 'राजपुरूषः' में राजन् शब्द भी पुरूष के विशेष प्रकार को बताता है, अतः दोनों में एकार्थीभाव है।

समास की एकपदता :

यद्यपि समस्त पद में एक से अधिक प्रातिपदिकों का योग होता है, परन्तु इतना होने पर भी अर्थ व प्रत्यय–योजना की दृष्टि से समस्त पद एक का ही बोध कराता है, अर्थात् समस्त–पद से वे सारी प्रक्रियाएँ की जाती हैं, जो किसी असमस्त शब्द से की जाती है। पारिभाषिक शब्दावली में हम यूँ कह सकते हैं कि समस्त पद पुनः प्रातिपदिक बन जाता है। इससे स्पष्ट हुआ कि यदि समस्त पद में एक पदता न होती तो फिर प्रातिपदिक के रूप में एक पदता न होती तो फिर प्रातिपदिक के रूप में उसका व्यवहार सम्भव नहीं था। इस तथ्य का समर्थन पाणिनी ने अपने सूत्रों में किया है। इसके लिए उन्होंने नियम विधायक सूत्र 'कृतद्धितसमासाश्च'[13] दिया है अर्थात् कृदन्त व तद्धितान्त तथा समास की भी प्रातिपदिक संज्ञा होती है। तथा प्रा0 संज्ञा करने वाला सूत्र ''अर्थवदृधातुरप्रत्यय–प्रतिपदिकम्''[14] दिया है। यहां पर कृदन्त, तद्धितान्त व समास की प्रातिपदिक संज्ञा है, तथा अर्थवान् शब्द ही प्रा0 होते हैं, तो इनकी भी सार्थकता सिद्ध होती है, परन्तु यह सार्थकता समूह में न होकर इसके अवयवों में

e-ISSN: 2348-6848
p-ISSN: 2348-795X
Volume 05 Issue 02
January 2018

होती तो फिर अलग से वर्णन करने की जरूरत नहीं थी। पाणिनी ने इस और स्वतंत्र रूपसे निर्देश किया है कि वे स्वयं ईकाई होते हैं, तथा उनकी अर्थवत्ता भी ईकाई के रूप में होती है।

समास की उत्पत्ति–

संस्कृत में स्वतंत्र पदों को एक समस्त पद के रूप में घटित करने की मूल प्रवृत्ति इसकी उत्पत्ति के आदिकाल से ही, अर्थात् भारोपीय काल से ही विद्यमान थी। ग्रीक, लैटिन और अवेस्ता में भी समस्त पदों की स्थिति के बारे में प्रमाण हैं, कि संस्कृत ने अपनी समास प्रक्रिया को भारोपीय भाषा परिवार से उत्तराधिका में प्राप्त किया था।[15]

समास में अपने पूर्वपद का निर्विभक्तिक अर्थात् प्रातिपदिक होना भाषा के इतिहास पर भी प्रकाश डालता है। जो भाषा की उस प्राचीन अवस्था की और संकेत देता है। जिसमें विभक्तियाँ नहीं लगाई जाती थी, तथा वाक्य–रचना में संज्ञा और विशेषण विभक्ति प्रत्ययों के बिना ही केवल प्रातिपदिक रूप में दूसरे शब्दों के साथ अपना वाक्यात्मक संबंध स्थापित कर सकते थे, तथा बाद में इस प्रकार के संबंध स्थापित कर सकते थे, तथा बाद में इस प्रकार के संबंध की अभिव्यक्ति के लिए विभक्तियों की आवश्यकता हुई। जब प्रातिपदिकों से विभक्तियाँ भी लगने लगी तो ऐसी अवस्था में भी कुछ युग्म शब्द नियमित रूप से साथ रहने के कारण एकरूपता को प्राप्त होते थे, तथा अपनी स्वतंत्र सत्ता को छोड़ देते थे। इन युग्मों के द्वितीय शब्द से ही विभक्तियाँ पैदा हुई, प्रथम से नहीं, तथा आगे फिर विग्रह द्वारा इनके अर्थ को जाना गया। इस प्रकार विभक्तियों के उत्पन्न होने पर भी जिन युग्मशब्दों के निरन्तर साथ रहने से, पहले पद में विभक्ति रहीं, उन्हे समास की संज्ञा दी गई, यह समास की उत्पत्ति का इतिहास है। जो प्राचीन समास विभक्ति की उत्पत्ति से पहले के हैं, उनमें पूर्वपद की विभक्ति का लोप स्वयं बुद्धि द्वारा किया हुआ नहीं है। अपितु इसका कारण यह है कि जब तक विभक्तियों की उत्पत्ति हुई ही नहीं थी, तथा बाद में जिन समासों में पूर्वपद की विभक्ति का लोप किया है, वहां पर व्याकरण के नियमों के अनुसार बुद्धि द्वारा विभक्ति का लोप किया गया है। इसी कारण पाणिनी ने यहां लुक् का विधान किया है कि[16] समास में पूर्व पद की विभक्ति

International Journal of Research
Special Issue for UGC Approved Journal-Hindi Papers
Available at https://edupediapublications.org/journals
e-ISSN: 2348-6848
p-ISSN: 2348-795X
Volume 05 Issue 02
January 2018

का लोप हो जाता है, लुक् समास की अपेक्षा 'अलुक्' समास का उद्भव बहुत बाद के काल का है। वाक्य में विभक्तियों के स्थिर पदों में होने पर जो विभक्ति को लुप्त न करके भी नियत साहचर्य से एकत्व को प्राप्त होते हैं, उन्हें अलुक् समास को संज्ञा दी गई है, अर्थात् इनमें बीच की विभक्ति का लोप नहीं होता और वह वैसी ही बनी रहती है। उदाहराणार्थ यथाः—जास्पति, बृहस्पति आदि।

समासों का वर्गीकरण :

समास की परिभाषा में जब दो या दो से अधिक पदों का एक पद बनाया गया तो प्रश्न उठना स्वाभाविक हुआ कि उन समस्त पदों में प्रधानता पूर्वपद को ही दी जाए या उत्तरपद को इसके लिए भिन्न–भिन्न समासों में भिन्न–भिन्न पदों को प्रधान माना गया, तथा इसी के आधार पर भारतीय वैयाकरणों ने समयास के चार भेद माने हैं।[17] यथाः –

''प्रायेण पूर्वपदप्रधानोऽव्ययीभावः, प्रायेणोत्तरपदार्थप्रधानस्तपुरूषः।

प्रायेणान्यपदप्रधानोबहुब्रीहिः, प्रायेणोभयपदार्थप्रधानों द्वन्द्वः।।

पूर्वपद प्रधानः –

जिसमें उत्तर पद की अपेक्षा पूर्व पद प्रधान हो, इसको अव्ययीभाव का नाम दिया गया।

उत्तरपदप्रधानः –

जिसमें पूर्व पद की अपेक्षा उत्तरपद को प्रधान माना जाए। इसको तत्पुरूष समास का नाम दिया गया।

उभयपद प्रधान :–

जिसमें पूर्वपद और उत्तरपद दोनों प्रधान हों, इसका द्वन्द्व नाम से कहा गया।

अन्यपद प्रधान :–

जिसमें किसी अन्यपद की प्रधानता हो, इसको बहुब्रीही नाम दिया गया।

परन्तु कुछ व्याकरणों ने रूप–रचना की दृष्टि से समासों का वर्गीकरण किया है, उन्होंने पदो ंके अर्थ को प्रधान नहीं माना, अपितु पदो ंके क्रम के आधार माना है, उन्होंने समस्त पदों को छः भागों में वर्गीकृत किया है[18]–

''सुपां सुपातिङ्.ा नाम्ना धातुनाऽथ लिङ्.ा तिङ्.ा ।

सुबन्तोनेति विज्ञेयः, समासः षड्विधो बुधैः ।।

1. सुबन्त का सुबन्त से – यथा राजपुरूषः।
2. सुबन्त का तिङ्न्त से – पर्यभूषयत्।
3. सुबन्त का नाम से – कुम्भकारः।
4. सुबन्त का धातु से – कुटप्रः।
5. तिङ्न्त का तिङ्न्त से – पिबतरवादता।
6. तिङ्न्त का सुबन्त से – कृन्ताविवक्षणा।

डॉ. बलदेव सिंह ने इन उपर्युक्त भेदों का अन्तर्भाव तीन में ही कर दिया है।[19] यथा–

सुबन्त का सुबन्त से – राजपुरूषः, कुम्भकारः।

तिङ्न्त का तिङ्न्त से – पिबतरवादता।

सुबन्त का तिङ्न्त से – पर्यभूषत।

उपर्युक्त छः भागों की अपेक्षा यह वर्गीकरण प्रायः उचित जान पड़ता है। आधुनिक भाषाशास्त्रियों ने भी विवेचन की दृष्टि से समासों के उपर्युक्त ये तीन ही भेद माने हैं। समस्त–पदो ंके अर्थ के विचार वे वैयाकरणों ने मुख्य चार ही भेद माने हैं, परन्तु पाणिनी 2.1.4 पर महाभाष्य, काशिक और सि. कौ. के अनुसार उपर्युक्त चार समासों के अतिरिक्त अन्य समास भी माने हैं, तथा ऐसे समासों के लिए किसी विशेष संज्ञा का प्रयोग नहीं मिलता है। पाणिनीय सम्प्रदाय वाले कातन्त्र व्याकरण और आदि चार ही समासों को मानते हैं, उन्होंने

International Journal of Research
Special Issue for UGC Approved Journal-Hindi Papers
Available at https://edupediapublications.org/journals
e-ISSN: 2348-6848
p-ISSN: 2348-795X
Volume 05 Issue 02
January 2018

समासों का वर्गीकरण पाणिनी के अनुसार ही किया है। तथा कुछ अन्य मुग्ध बोध और सारस्वत व्याकरण द्विगु और कर्मधारय को तत्पुरूष से अलग श्रेणी में रखते हैं।[20]

पाणिनी ने समास को मुख्य रूप से चार प्रकार का माना है – 1) अव्ययीभाव 2) तत्पुरूष और उसका उपभेद कर्मधारय तथा कर्मधारय का भेद द्विगु, 3) बहुब्रीही 4) द्वन्द्व तथा पाँचवा प्रकार संज्ञा विशेष रहित समास जिसको पणिनी ने सहसुपा के अन्तर्गत लिया है। ऐसे समासों को प्रत्यक्ष रूप से उपर्युक्त किसी भी वर्ग में नहीं रखा जा सकता है। पाणिनी ने लक्षण व भेद दर्शाते हुए तत्पुरूष की श्रेणी को विस्तृत रूप में माना है। पाणिनी कर्मधारय को भी निर्धारित प्रकार के तत्पुरूष के अन्दर ही लेते हैं, परन्तु बाद में नैयायिकों तथा कुछ वैयाकरणों ने इसको अलग श्रेणी का माना, जो सामान्यतः उचित प्रतीत नहीं होता। सुविधा के लिए आगे यौगिक पद संघटक तत्वों की आकृति के आधार पर बांटे गए, परन्तु कुछ उपविभागों से समासों की मौलिक संरचना का कोई महत्व ही न रखा। उदाहरणार्थ यथा– संयुक्त पद का नञ् तत्पुरूष समास कहा जाता है, तथा अलग से इसे नञ् समास भी कह देते हैं। समस्त पद का नियम 2.2.19[21] के अनुसार उपपद समास कहलाता है।

उपर्युक्त सभी मान्यताओं को देखते हुए समासों का चार वर्गों में विभाजन ही उचित प्रतीत होता है। इसमें 'सह सुपा'' द्वारा अन्य जो समास इन वर्गों के अन्दर नहीं आते, को ले लिया गया है। इस प्रकार पाणिनी ने पाँचवें प्रकार के समास का भी वर्णन किया है।

वैदिक समास भाषा में

वैदिक भाषा में भी समासों का प्रयोग प्रचुर मात्रा में मिलत है, संस्कृत की समास–प्रक्रिया के ऐतिहासिक विकास के सम्यक विश्लेषण से पता चलता है कि, वैदिक भाषा में केवल दो पदो ंके ही समास मिले हैं, विशेष रूप से वैदिक काल में जब संस्कृत आम बोलचाल की भाषा थी तो इसके समस्त पदो ंके घटकों की संख्या बहुत सीमित थी, अर्थात् संख्या केवल दो पदों की होती थी, तथा कहीं–कहीं पर हमें तीन पदो ंके भी समास मिलते हैं।[22] ऋग्वेद तथा अथर्ववेद में तीन से अधिक पदों के भी कुछ गिने चुन उदाहरण देखने में आए हैं।

International Journal of Research
Special Issue for UGC Approved Journal-Hindi Papers
Available at https://edupediapublications.org/journals
e-ISSN: 2348-6848
p-ISSN: 2348-795X
Volume 05 Issue 02
January 2018

उदारणार्थ यथाः 'अदब्धव्रतप्रमति[23] – अहिंसित व्रतों वाली अच्छी बुद्धि

पूर्वकामकृत्वने[24] – पहली इच्छाओं को पूरा करने के लिए।

आगे चलकर ब्राह्मणग्रन्थों में तीन पदों के समास भी मिलते हैं, तथा कल्पसूत्र में तीन से भी अधिक पदों के समास मिलते हैं। मुख्य रूप से कर्म सूत्रों के काल में तीन से भी अधिक पदों के समास मिलते हैं। मुख्य रूप से धर्मसूत्रों के काल में भी समास उसी रूप में थे, जितने की प्रारम्भिक वैदिक काल में थे। अधिकांश समास दो या तीन पदों में ही थे। प्रायः द्वन्द्व समासों में अनेक अवशेषों पर 15 शब्दों या कभी ज्यादा का के भी समास मिले हैं। वैदिक भाषा में षष्ठी तत्पुरूष समास के उदाहरण अधिक मात्रा में मिलते हैं, तथा तृतीया, चतुर्थी व पंचमी तत्पुरूष का प्रयोग क्षेत्र कम देखने को मिला है। वैदिक भाषा में स्वरों की सहायता से ही किसी शब्द के उचित अर्थ का बोध होता है, पाणिनी ने छठे अध्याय के दूसरे पाद में समस्त शब्द विषयक स्वरों का वर्णन मिलता है, जिसमें अनेक प्रकार के समासों की संभावना बनी रहती है, कभी बहुब्रीही भी हो सकता है और कभी तत्पुरूष भी। इस संदेह का निवारण वहां पर स्वर की सहायता से ही होता है, यदि यह पद अन्तोदात्त हो तो कर्मधारय समास होगा। और यदि पूर्वपद प्रकृति स्वर हो तो बहुब्रीही समास होगा, ऐसा विचार भर्तृहरि का है।[25] उदाहरणार्थ – भाष्यकार, पतंजलि ने व्याकरण के प्रयोजनों में एक उदाहरण दिया है– 'स्थूलपृषती' यहां पर दो प्रकार से विग्रह हो सकता है। प्रथम में ''स्थूला चासौ पृषती च'' इस तत्पुरूष में स्थूल और बूटे वाली गाय का बोध होता है, परन्तु स्वरभेद के कारण 'स्थूलानि पृषन्ति यस्याः'' इस बहुब्रीही समास में बूटे वाली गाय का बोध होता है, चाहे वह मोटी हो या पतली भर्तृहरि ने यहां पर स्वर को देखकर पूर्वपद प्रकृतिस्वर व आद्युदात्त होने से बहुब्रीही का निश्चय किया है।

स्वर शब्द आवाज की ध्वनि और स्वर सामंजस्य के सामान्य भाव को रखता है, बोलने में लोग जिन शब्दों को महत्व देना चाहते हैं, तो वे प्रायः बातचीत में अनेक दबाव शब्दों पर डालते हैं। लयात्मक स्वर ध्वनि की ऊँचाई के साथ संबंधित है, जो स्वरयंत्र के प्रकम्प पर निर्भर है।' वे तीन हैं–

International Journal of Research
Special Issue for UGC Approved Journal-Hindi Papers
Available at https://edupediapublications.org/journals
e-ISSN: 2348-6848
p-ISSN: 2348-795X
Volume 05 Issue 02
January 2018

1. अनुदात्त (grave)
2. उदात्त (actue)
3. स्वरित्त (cireumflex)

पाणिनी ने इसका वर्णन अष्टाध्यायी के छठे अध्याय में किया है। पाणिनी ने पूर्वपद के लिए पहला और उसके बाद द्वितीय पद का प्रयोग किया है। ये पूर्वपद ओर उत्तरपद फिर आगे तीन भागों में बांटे गए हैं– क) स्वर जो बाकि बचे हैं, वें प्रकृतिस्वर तथा (ख) शब्दों के आदि अंग के लिए आद्युदात्त और (ग) अन्तिम स्वर के लिए अन्तोदात्त किसी भी शब्द के अशुद्ध उच्चारण से मन्त्रों आदि का अर्थ भी विपरित हो जाता है। जैसे वृत्र ने इन्द्र को मारने के लिए यज्ञ किया, परन्तु गलत स्वर का उच्चारण करने से वह स्वयं ही मर गया। महाभाष्य में इन्द्रशत्रु में दो प्रकार से समास संभव हैं इन्द्रस्य शत्रुः शत्रुर्यस्य स इन्द्रशत्रुः (बहुब्रीही) यहां ऋत्विक को तत्पुरूष अभिष्ट होने के कारण उसे अन्तोदात्त स्वर का प्रयोग करना था, परन्तु मन में तत्पुरूष का भाव रखते हुए उसने अज्ञान से बहुब्रीहि सूचक आद्युदत्त स्वरयुक्त इन्द्रशत्रुः शब्द का उच्चारण किया। इस प्रकार वैदिक भाषा में स्वर देखकर ही समास का अर्थ होता है।

उत्तरकालीन भाषा में समास –

प्राचीन काल में जब संस्कृत आम बोलचाल की भाषा थी तो स्वाभाविक रूप से दो या तीन पदो ंके समासों का प्रयोग होता था, परन्तु बाद में भाषा में कृत्रिमता आई और दो या दो से अधिक पदो ंके समास बनने लगे, उपनिषदों और ब्राह्मण–ग्रंथों में शैली के अधिक विस्तृत होने और काल के परवर्ती होने पर दो–तीन पदो ंके समास बनने लगे, फिर साहित्यिक संस्कृत में पूरे के पूरे वाक्यों में ही समस्त–पद दिखाई देते हैं, गद्य साहित्य और बाद के लौकिक संस्कृत में समासों का क्रम अत्यन्त अलंकृत रूप में देखने को मिलता है। बाणभट्ट ने कादम्बरी में ऐसे ही समासों का प्रयोग किया है, जिसका प्रसंग बहुत दूर तक चलता रहता है। राजा शुद्रक की विदिशा नामक राजधानी का वर्णन करते हुए बाण ने अनेक विशेषणों का वर्णन किया है–

International Journal of Research
Special Issue for UGC Approved Journal-Hindi Papers
Available at https://edupediapublications.org/journals
e-ISSN: 2348-6848
p-ISSN: 2348-795X
Volume 05 Issue 02
January 2018

''तस्य च राज्ञः कालिकालभय पुंजीभूतकृत युगकारिणी त्रिभुवनप्रसवभूमिरिव विस्तीर्णा मंजनमालवविलासिनी कुचतटास्फालनजर्जरीकृतोर्मिमालयाजलावगाहना............................ ....नगरी राजधान्यासीत्।''[26]

यहां पर कवि ने राजधानी के वर्णन में उसको अनेक विशेषणों से अलंकृत करते हुए समस्त पदों का प्रयोग किया है। इस प्रकार के समासों में कवि की अपनी कल्पना ही है। कथा में समस्त पदावली का प्रयोग देखकर जिज्ञासा उत्पन्न होती है कि क्या कवि कथा में सभी जगह समस्त पदावली का प्रयोग करता है, या कहीं—कहीं ही करता है। इसका उत्तर यह है कि जहां पर कवि भावनाओं का वर्णन करता है, वहां पर बहुत सी बातों को जल्दी कहकर आगे बढ़ना चाहता है। परन्तु जहां पर कथा धीरे—धीरे चलती है, और कवि विषय के पूरे स्वरूप का उपन्यास करना चाहता है तो, समस्त पदावली का प्रयोग करता है।

उपसंहार—

प्रस्तुत विषय के समयक् विश्लेषण करने पर सार रूप में हम संक्षेप रूप से कह सकते हैं कि समास होने पर पदों की विभक्तियों का लोप होकर एक समस्त पद तथा अनेक स्वरों का एक स्वर बन जाता है, ऐसा होने से शब्दों का आकार छोटा होता है, लेकिन अर्थ वही रहता है। समास केवल समर्थ शब्दों का ही होता है, असमर्थों का नहीं। समास की उत्पत्ति के विषय में कहा जा सकता है कि इसकी उत्पत्ति भारोपीय काल से ही विद्यमान थी। इसी के आधार पर अलुक् और लुक् समास की संज्ञा दी गई।

कालांतर में शैली के अधिक विस्तृत होने पर समास दो से अधिक पदो ंके भी हो गए, जबकि वैदिक काल में दो पदो ंके ही समास मिले हैं। पाणिनी ने मुख्य रूप से चार प्रकार का ही माना है, तथा जो समास उपर्युक्त चारों समासों के वर्ग में नहीं आते, उनको अलग से —सह सुपा' सूत्र के अन्तर्गत लिया गया है। वैदिक भाषा में समास का निर्णय स्वर की सहायता से ही होता है कि कहां तत्पुरूष है और कहां बहुब्रीही। तत्पुरूष में स्वर अन्तोदात्त तथा बहुब्रीहि में आद्युदात होता है। उत्तरकालीन संस्कृत में समस्त पदों में अत्यधिक जटिलता आई, और पूरे के पूरे वाक्य समस्त—पदयुक्त दिखाई देने लगे। समास के अर्थ, उत्पत्ति,

वर्गीकरण तथा वैदिक तथा उत्तरकालीन भाषा में समास के विकास का वर्णन विस्तृत रूप से किया गया है। अतः निष्कर्ष रूप में यह भी सामने आता है कि समास की उत्पत्ति बहुत पहले से ही अर्थात् भारोपीय काल से ही विद्यमान थी।

संदर्भ–ग्रंथ सूची

---

[1] दण्डी काव्यादर्श, 1/4

[2] तैत्तिरिय संहिता, 6.4.7

[3] भर्तृहरि (वाक्यपदीयम्) ब्रह्मकाण्ड, पृष्ठसंख्या 81

[4] डॉ0 रामदेव त्रिपाठी, भाषा विज्ञान की भारतीय परम्परा और पाणिनी–पृ.सं.–495

[5] पाणिनी अष्टाध्यायी, 1.1.14 (सुप्तिङ्.तम् पदम्)

[6] पा0 अ0, 2.1.1

[7]समसनं समासः, सम्+अस्+घञ् (अ) (3.3.18)

[8] Samasa is a technical name for the combination of two or sometimes even more independent words that are unified SKT Compounds, A Philosophical Study, Page. 27

[9] चारूदेव शास्त्री, व्याकरण चन्द्रोदय, पृ सं0 79

[10] सुप्तिङ्.तम् पदम (पा0 अष्टा 1.1.14)

[11] समर्थ पदविधि (पा0 अष्टा 2.1.1)

[12] पाणिनी अष्टाध्यायी (2.1.1)

[13] पा0 अष्टा (1.2.46)

[14] पा0 अ. (1.2.45)

[15] देवीदत्त शर्मा, संस्कृत का ऐतिहासिक एवं संरचनात्मक परिचय पृ0 सं0–110

[16] सुपोधातुप्रातिपदिकयोः, पा0 अष्टा. 2.4.71

e-ISSN: 2348-6848
p-ISSN: 2348-795X
Volume 05 Issue 02
January 2018

[17] देवीदत्त शर्मा, ‘‘संस्कृत का ऐतिहासिक एवं संरचनात्मक परिचय’’ (समस्त पद रचना) पृ0 208

[18] भट्टोजिदीक्षित, सि. कौमुदी (सर्वसमास शेष प्रकरणम्)

[19] बलेदेव, पदपदार्थसमीक्षा, पृ0 सं0 254

[20] मुग्ध बोधव्याकरण पृ0 सं0 318, तथा सारस्वतव्याकरण पृ0 सं0 152

[21] उपदमतिङ्., पा0 अष्टा0 2.2.19

[22] ह्विटने, संस्कृत व्याकरण, पृ0 सं0 480

[23] ऋग्वेद, 2.9.1, वैदिक व्याकरण, पृ0 सं0 385

[24] अथर्ववेद, 7.116,1, वैदिक व्याकरण पृ0 सं0 310

[25] भर्तृहरि, महाभाष्यदीपिका, पृ0 सं0 10

[26] बाणभट्ट, कादम्बरी (कथामुखम् पृ0 47)